बढ़ती शराबखोरी

एक तरफ देश विकास की राह पर आगे बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर समाज का एक हिस्सा खुद को शराब के नशे में डूबो रहा है. साल 2010 और 2017 के बीच हमारे देश में शराब के उपभोग में 38 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है. विश्व स्वास्थ्य संगठन और ग्लोबल बर्डेन ऑफ डिजीज की रिपोर्टों के आधार पर किये गये जर्मन शोधार्थियों के ताजा अध्ययन के अनुसार, दुनियाभर में 1990 की तुलना में 2017 में शराबखोरी में 70 फीसदी की बढ़त हुई है. पिछले साल आयी विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के साथ हालिया अध्ययन को रखकर देखें, तो 2005 से 2017 तक शराब का सेवन लगभग ढाई गुना बढ़ा है. साल 2016 में इस नशे के कारण पूरी दुनिया में 30 लाख से अधिक लोग मरे थे, जिनमें से 28 फीसदी मौतें यातायात दुर्घटना, आत्मघात और झगड़े में हुई थीं. बाकी बीमारियों की भेंट चढ़े थे. इन सभी मामलों में भारत बहुत आगे है, सो यह अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि शराब किस हद तक हमारे लिए तबाही का बड़ा कारण है. जहरीली शराब का कहर भी अक्सर सुर्खियों में होता है. हमारे देश में केंद्र सरकार द्वारा कराये गये हालिया सर्वेक्षण के मुताबिक, 10 से 75 साल आयु के करीब 14.6 फीसदी भारतीय शराब पीते हैं, जिनमें पांच फीसदी को लत छोड़ने के लिए चिकित्सकीय मदद की जरूरत है. सुविधाओं और जागरूकता की कमी से इनमें से सिर्फ आधे लोगों को ही ऐसी मदद मिल पाती है. चूंकि हमारे यहां नशे को नैतिकता और वर्जना की दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति है, सो अक्सर आदी व्यक्ति और उसके परिजन डॉक्टर या सुधार केंद्र जाने में हिचकते हैं. परामर्श और सुधार के लिए बने कई केंद्र या तो अवैध हैं या फिर उनमें सुविधाओं का अभाव है. शराबखोरी के साथ अन्य नशीले पदार्थों के बढ़ते चलन की वजह से हालत लगातार बिगड़ती जा रही है. इससे बीमारी, अपराध और अक्षमता में भी वृद्धि हो रही है. बच्चों और किशोरों में शराब और दूसरे नशे की लत बढ़ने से युवा पीढ़ी का भविष्य दांव पर है और बड़ी संख्या में परिवार तबाही के कगार पर हैं. रिपोर्ट में भारत समेत अनेक विकासशील और अविकसित देशों में शराबखोरी के बढ़ने की आशंका भी जतायी गयी है. इस दिशा में व्यापक पहल जरूरी है. सरकार ने नशा मुक्ति के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम की एक रूप-रेखा तैयार की है और आशा है कि उसे जल्दी ही अमली जामा पहनाया जायेगा. हमें बहुत-से मनोचिकित्सकों, प्रशिक्षित सलाहकारों और पुनर्वास केंद्रों की जरूरत है. स्वास्थ्य से संबंधित नीति-निर्धारण में तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में नशे की समस्या को प्राथमिक चिंताओं में शामिल किया जाना चाहिए. शराबबंदी, बिक्री पर निगरानी, मौजूदा कानूनों जैसे आयामों के अनुभवों की समीक्षा भी की जानी चाहिए तथा इसके आधार पर नये सिरे से नियमन के प्रावधान होने चाहिए. लेकिन सिर्फ सरकारी और कानूनी प्रयासों से नशे पर नियंत्रण संभव नहीं है. इसमें समाज और परिवार को भी योगदान करना होगा.

स्वास्थ्य से संबंधित नीति-निर्धारण में तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में नशे की समस्या को प्राथमिक चिंताओं में शामिल किया जाना चाहिए .

किंगमेकर के किरदारों का दौर

प्रभु चावला
वरिष्ठ पत्रकार
prabhuchawla
@newindianexpress .com

राजनीति का अंतिम कर्म सत्ता है. राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा से युक्त छोटे-बड़े सभी किस्म के सभी नेताओं का सपना इंद्रप्रस्थ के चमचमाते सिंहासन पर आसीन होना ही होता है. अब जबकि आमचुनावों के परिणामों को सिर्फ दो सप्ताहों की प्रतीक्षा शेष रह गयी है, कई नेता 'किंगमेकर' की भूमिकाओं में उतर गये हैं. चालू आम चुनाव विचारों एवं आदर्शों का संघर्ष नहीं है. सभी 542 निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाताओं के सामने विकल्प कुछ विचित्र ढंग से केवल दुहरे रूप में ही मौजूद है-यह कि वह पीएम मोदी अथवा एक प्रांतीय क्षत्रप में किसी एक का चुनाव करे.

उदाहरण के लिए मोदी एवं उनकी पार्टी के नेता मतदाताओं को बार-बार यह याद दिला रहे हैं कि कमल के बटन को दबाने से उनका वोट सीधे मोदी के खाते में जायेगा. दूसरी ओर विपक्षी वीरों में ममता, अखिलेश, चंद्रबाबू नायडू, मायावती आदि शामिल हैं. हालांकि, उनमें से किसी ने भी अब तक सौदेबाजी के पैंतरे प्रारंभ नहीं किये हैं, प्रधानमंत्री आवास के भावी वासियों में उनके नाम शुमार किये जा रहे हैं. 435 सीटों पर मतदान समाप्त हो चुका है. अनुभवी राजनीतिक भविष्यवक्ता हवा का रुख भांपने में लगे हैं. उधर कार्यकर्ताओं की मानसिकता तथा भंगिमाएं देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि देश को एक त्रिशंकु जनादेश भी प्राप्त हो सकता है.

बाकी बचे 107 सीटों पर निर्णायक पलों की मोदी सुनामी भले ही अंतिम परिणाम पलट दे, मगर ऐसा केवल सीमित रूप में ही संभव हो सकेगा. कुछ कट्टर अपवादों को छोड़ दें, तो टीवी चैनलों समेत भारतीय मीडिया ने तटस्थता के तटों तक जा पहुंची एक हैरानी भरी संजीदगी अपना ली है. क्या यह अब तक संपन्न पांच एक्जिट पोल का नतीजा है? जो भी हो, इक्के-दुक्के क्षेत्रीय क्षत्रपों ने इसी महीने राज्याभिषेक के दिवास्वप्न देखने भी शुरू कर दिये हैं. उदाहरण के लिए गैर-कांग्रेस एवं गैर-भाजपा गठबंधन के स्वयंभू शिल्पकार तेलंगाना के मुख्यमंत्री के चंद्रशेखर राव (केसीआर) को लिया जा सकता है. उनके राज्य में लोकसभा के लिए सिर्फ 17 सीटें हैं, पर उन्हें यकीन है कि दिसंबर 2018 के विधानसभा चुनावों में उनकी शानदार विजय ने उनकी स्थिति अन्य नामचीन क्षेत्रीय एवं विपक्षी नेताओं की बराबरी तक ला दी है. यह भी विडंबना है कि अपनी भाजपा-समर्थक छवि के बावजूद उनकी इस अनोखी मुहिम के इंजन के लिए उनकी पसंद धुर मोदी-भाजपा विरोधी एवं केरल के मार्क्सवादी मुख्यमंत्री पिनराई विजयन पर जा टिकी है.

विजयन को अपने पाले में करने के बाद उनके अगले निशाने पर डीएमके अध्यक्ष एमके स्टालिन हैं, कांग्रेस जिनकी चुनावी साथी है. इसमें कोई शक नहीं कि केसीआर अपने राज्य के निर्विवाद नेता हैं. हालांकि, उन्होंने अभी अपने पत्ते नहीं खोले हैं, पर राजनीतिक पंडितों को यह यकीन है कि यदि भाजपा बहुमत से पीछे रह गयी, तो वे उसका समर्थन करेंगे. जो भी हो, उनकी वर्तमान सक्रियता कई संभावनाओं के द्वार खोलती है. उनकी प्रभावशीलता इस पर निर्भर होगी कि वे स्वयं अपने राज्य से लोकसभा की कितनी सीटें निकाल पाते हैं. उनके अब तक के एकलवादी इतिहास के संदर्भ में वे गठबंधन निर्माण के विशेषज्ञ तो कभी नहीं रहे हैं.

मतदाता 60 प्रतिशत से अधिक मौजूदा सांसदों को दोबारा दिल्ली नहीं लौटने देते . भाजपा द्वारा 300 से भी अधिक सीटों का दावा एक अतिशयोक्ति हो सकता है, चुनावी अध्ययन एवं इतिहास जिसका समर्थन नहीं करता .

उनकी विश्वसनीयता एक अन्य वजह से भी संदेहास्पद हैं, क्योंकि उनकी पार्टी दक्षिण की एकलौती पार्टी थी, जिसे इनकम टैक्स, प्रवर्तन निदेशालय तथा सीबीआई जैसी एजेंसियों के भारी दबावों का सामना नहीं करना पड़ा. अगली सरकार की संरचनागत संभावनाओं की तलाश में उनका आत्यंतिक उत्साह कुछ सियासी सवाल भी उठाता है. कांग्रेस के प्रति उनकी जाहिर दुश्मनी उन्हें भविष्य की ऐसी किसी भी संभावना से कांग्रेस को बाहर रखने को प्रेरित करेगी. चूंकि वे भाजपा विरोधी पार्टियों से संवाद कर रहे हैं, सो उन्हें यह यकीन हो गया लगता है कि अगली सरकार का रंग भगवा तो नहीं ही होगा. पांच दक्षिणी राज्यों की कुल 131 सीटों में से भाजपा द्वारा 20 से अधिक सीटें निकाल पाने की संभावना न के बराबर है, इसलिए त्रिशंकु संसद की स्थिति में डीएमके, टीडीपी, वाम दलों, जेडी (एस), टीआरएस, वाइएसआर कांग्रेस तथा खुद कांग्रेस के 110 सांसदों की संघ शक्ति निर्णायक भूमिका निभा सकती है. इस आकलन ने केसीआर को सक्रिय कर दिया है.

वर्ष 2014 में भाजपा ने विशाल यूपीए-विरोधी तथा मोदी समर्थक लहर के बल पर 400 से कुछ ज्यादा सीटों पर उतर 282 सीटों पर विजय प्राप्त की थी, जिनमें 225 सीटें तो केवल 11 राज्यों ने पूरी कीं. इनमें से आधी से भी अधिक कांग्रेस से छीनी गयी थीं. राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश एवं गुजरात में उसे लगभग 100 प्रतिशत सफलता मिली. उत्तर प्रदेश की 80 सीटों में तो उसने रिकॉर्ड 71 सीटें ले लीं.

भाजपा विरोधियों का कहना है कि इस बार वह अपनी यह गाथा दोहरा नहीं सकती. अनुभव यह बताता है कि मतदाता 60 प्रतिशत से अधिक मौजूदा सांसदों को दोबारा दिल्ली नहीं लौटने देते. भाजपा द्वारा 300 से भी अधिक सीटों का दावा एक अतिशयोक्ति हो सकता है, चुनावी अध्ययन एवं इतिहास जिसका समर्थन नहीं करता, क्योंकि वैसी स्थिति में उसे न केवल अपनी वर्तमान सीटों पर फिर से जीत हासिल करनी होगी, बल्कि पश्चिम बंगाल, ओड़िशा और दक्षिण भारत में भी और अधिक सीटें प्राप्त करनी होंगी. इसकी उम्मीद नजर नहीं आती.

दूसरी ओर, संभावनाओं का नियम कांग्रेस के पक्ष में प्रतीत होता है. इसकी सभी 44 सीटें सिर्फ 14 राज्यों से आयीं, जिनमें से किसी में भी उसे दहाई अंकों की जीत नसीब न हुई. यह संख्या इस बार सीधा ऊपर ही जा सकती है. सभी राज्यों में उसकी मुख्य विपक्षी सिर्फ भाजपा ही है और भाजपा को पहुंची हानि कांग्रेस के लिए लाभ में बदल जायेगी. हालांकि, दोनों पार्टियों का आर्थिक एवं सामाजिक ताना-बाना एक-दूसरे के एकदम समान है.

राहुल गांधी कोई सोनिया गांधी नहीं हैं. हालांकि, संवाद करने का उनका कौशल बहुत सुधरा है, फिर भी बिल्कुल भिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि के विपक्षी नेताओं के लिए स्वीकार्यता तथा विश्वसनीयता की विराटता तक अभी वे नहीं पहुंच सके हैं. राहुल विपक्षी नेताओं की किसी बैठक में शायद ही कभी उपस्थित होते हैं. मोदी का करिश्मा इस पर निर्भर है कि वे मतदाताओं को किस हद तक मना लेते हैं कि वोट देते वक्त वे भाजपा को भूलकर सिर्फ उन्हें और उनके काम को याद रखें.

(अनुवाद : विजय नंदन)

राष्ट्रीय खांचे में जाति

संजय बारू
द एक्सिडेंटल प्राइम मिनिस्टर के लेखक
sanjayabaru@gmail.com

देश के उत्कृष्ट शिक्षण संस्थानों में शुमार जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के संस्थापक प्रोफेसरों में से एक तथा राजनीति की समझ रखनेवाले एक अनुभवी राजनीतिशास्त्री दिवंगत रशीदुद्दीन खान अक्सर भारतीयों की अखिल भारतीय पहचान को लेकर एक महत्वपूर्ण टिप्पणी किया करते थे. रशीदुद्दीन खान कहते थे कि केवल ब्राह्मण और मुस्लिम ही वास्तव में अखिल भारतीय समुदाय का निर्माण करते हैं.

प्रोफेसर रशीदुद्दीन खान ने ऐसा इसलिए कहा, क्योंकि एक ब्राह्मण या मुस्लिम देश के किसी भी हिस्से से ही क्यों न आते हों, वे देश के दूसरे हिस्से से आनेवाली अपनी जाति के साथ शीघ्र ही संबद्ध भी हो जाते हैं. लिहाजा, उत्तराखंड के भारद्वाज गोत्र के वैष्णव को तमिलनाडु के अपने साथी ब्राह्मण के साथ अपनी सामाजिक, जाति और उप-जाति के दर्जे को बताने में कोई समस्या नहीं होगी. ठीक इसी तर्ज पर एक मुस्लिम के बारे में भी बहुत हद तक ऐसा ही कहा जा सकता है. केरल का मलयाली भाषी सुन्नी उत्तर प्रदेश के उर्दू भाषी सुन्नी के साथ सामाजिक तौर पर जुड़ जायेगा.

रशीदुद्दीन खान के तर्क को विस्तार देते हुए अनुसूचित जातियों या दलितों के बारे में भी कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है. वे अपने बीच की अलग-अलग उप-जातियों की पहचान के बावजूद एक-दूसरे से संबद्ध हो जाती हैं. देश के विभिन्न हिस्सों में जिस किसी भी प्रासंगिक स्थानीय नाम के साथ एक दलित पहचाना जाता हो, अखिल भारतीय स्तर पर सभी अनुसूचित जाति/ दलित एक ही भाव से सामाजिक प्रताड़ना के इतिहास को महसूस करते हैं. इसका उदाहरण उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री मायावती और आल इंडिया मजलिस-ए-इत्तेहादुल मुस्लिमीन के राष्ट्रीय अध्यक्ष असदुद्दीन ओवैसी हैं. दरअसल, दलित नेता के तौर पर मायावती और मुस्लिम नेता के तौर पर असदुद्दीन ओवैसी दोनों ही अपनी पहचान के आधार पर अखिल भारतीय निर्वाचन क्षेत्र बनाने की कोशिश करते हैं.

क्षत्रीय और वैश्य वर्ग की समस्या यह है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में ये जिस नाम से जाने जाते हैं, वे इतने भिन्न हैं कि उन्हें अपनी जाति को बताने के लिए अपने स्वजन से अपनी सामाजिक स्थिति की व्याख्या करनी होगी. तेलुगु देशम पार्टी के करिश्माई संस्थापक दिवंगत एनटी रामाराव ने हरियाणा के जाट नेता दिवंगत चौधरी देवीलाल से अपनी जाति की व्याख्या करने के लिए एक आसान तरीका खोजा था, 'मेरी जाति आपकी ही तरह है. कम्मा आंध्र प्रदेश के जाट हैं.'

भारत के भिन्न-भिन्न हिस्से के जो लोग जाति पिरामिड के शीर्ष और निचले पायदान पर हैं, वे सामाजिक पदानुक्रम में एक-दूसरे को रख सकते हैं, और संभवतः एक-दूसरे की सांस्कृतिक आदतों और पूर्वाग्रहों को भी संबद्ध कर सकते हैं. ऐसा वे मध्य जातियों की विशाल बहुलता के मुकाबले कहीं ज्यादा आसानी से कर सकते हैं. यह तथाकथित 'पिछड़ा वर्ग' की अखिल भारतीय विविधता है, जो एक पहेली बन जाती है. सवाल है कि तेलंगाना का मुन्नूरु कापू किस प्रकार व्याख्या करेगा कि जाति पदानुक्रम में वह बिहार के कुर्मी की तुलना में कहां खड़ा है, सिवाय यह बताने के कि वे दोनों 'अन्य पिछड़ी जाति/ वर्ग' (ओबीसी) से हैं.

'ओबीसी कौन है'? यह पूरे देश में अब एक राजनीतिक मुद्दा बन चुका है. आर्थिक रूप से सक्षम मराठा, पाटीदार और कापु, सभी ने आरक्षण के शैक्षणिक और रोजगार के लाभ का दावा करने के लिए ओबीसी दर्जे की मांग की है और कहीं-कहीं तो इसे लेकर आंदोलन भी हुए हैं. हमारे देश में ओबीसी पहचान में क्षेत्रीय विविधता देखते हुए पिछड़ा वर्ग/ जाति की राजनीति हमेशा से एक क्षेत्रीय चरित्र रही है. इसीलिए प्रत्येक राज्य के अपने क्षेत्रीय ओबीसी नेता और दल हैं. ऐसे में प्रश्न उठता है कि जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पिछले महीने यह दावा किया था कि विपक्षी दल के उच्च जाति के नेताओं द्वारा उन्हें इसलिए गाली दी जा रही है, क्योंकि वह ओबीसी से आते हैं, तो क्या वह अपनी जाति की स्थिति पर ध्यान आकर्षित कर रहे थे और अपनी धार्मिक मान्यता से ध्यान हटा रहे थे? यह भी सवाल उठता है कि उस वक्त प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी क्या ओबीसी निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक राष्ट्रीय संरचना बनाने की तलाश कर रहे थे?

दिलचस्प बात यह है कि नरेंद्र मोदी के बयानों के जवाब में अलग-अलग राज्यों के दूसरे 'क्षेत्रीय' ओबीसी नेताओं ने उनके दावों पर प्रश्न उठाया है. दरअसल ये प्रश्न इसलिए उठाये गये हैं, क्योंकि अखिल भारतीय विविधताओं को देखते हुए ऐसा पूछना बेहद आसान है कि ओबीसी कौन है. देशभर में ओबीसी पहचान की अस्पष्टता ने अब तक कई लोगों को ओबीसी दर्जे का दावा करने की छूट दी है और अभी तक हमारे यहां कोई भी अखिल भारतीय स्तर का ओबीसी नेता नहीं है. जिस समय एचडी देवगौड़ा देश के पहले ओबीसी प्रधानमंत्री बने थे, उनका राजनीतिक निर्वाचन क्षेत्र क्षेत्रीय रूप से सीमित था. क्या प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने खुद को पहले अखिल भारतीय ओबीसी नेता के रूप में पेश करने के लिए कोई राष्ट्रीय ओबीसी निर्वाचन क्षेत्र बनाया है? संभवतः इस आम चुनाव के परिणाम ही इस प्रश्न का सही उत्तर दे सकते हैं.

हमारे देश में ओबीसी पहचान में क्षेत्रीय विविधता देखते हुए पिछड़ा वर्ग/ जाति की राजनीति हमेशा से एक क्षेत्रीय चरित्र रही है . इसीलिए प्रत्येक राज्य के अपने क्षेत्रीय ओबीसी नेता और दल हैं .

बोधि वृक्ष

प्रेम के बिना

हो सकता है कि आप सम्माननीय हो जायें, समाज के अनुरूप हो जायें और आपकी इज्जत बढ़ जाये. लेकिन यह नैतिकता नहीं है, यह शील या सद्गुण नहीं है, यह केवल सम्मान के लिए है प्रेम के लिए नहीं. प्रेम के बिना आप नैतिक नहीं हो ही सकते. आदर-सम्मान धरती पर सबसे भयानक और घृणित चीज है, क्योंकि यह बहुत ही कुरूप चीजों पर पर्दा डालता है. जहां पर प्रेम होता है, वहां पर ही नैतिकता होती है. जहां पर प्रेम होगा, वहां आप जो भी करेंगे, वह सब कुछ अपने आप नैतिक हो जायेगा. प्रेम के बिना आप कुछ भी करें, आप कर्म की संपूर्णता को नहीं जान सकते, अकेला प्रेम ही आदमी को बचा सकता है. यही सत्य है कि हम लोग प्रेम में नहीं हैं, हम वास्तव में उतने सहज नहीं रह गये हैं, जितना हमें होना चाहिए. क्योंकि हम दुनिया को सुधारने, संवारने, जिम्मेदारियों, प्रतिष्ठा, सामने वाले से कुछ हटकर करने से, कुछ विशेष होने से सरोकार रखे हुए हैं. दूसरों के नाम पर आप अपने स्वार्थों के गर्त में डूबे हुए हैं, आप अपने ही घोंघेनुमा कवच में समाये हैं. आप समझते हैं कि आप ही इस सुंदर संसार का केंद्र हैं. किसी वृक्ष, किसी फूल या बहती हुई नदी को देखने के लिए आप कभी भी नहीं ठहरते, और अगर कभी ठहर भी जाते हैं, तो आपके मन में चलते हुए कई विचार, स्मृतियां और जाने क्या-क्या उतर आता है, लेकिन आपकी आंखों में सौंदर्य और प्रेम ही नहीं उमड़ता. प्रश्न है कि फिर एक व्यक्ति के पास करने के लिए क्या है? बस देखें-समझें और सहज-सरल रहें? हम अपनी इच्छाओं के लिए पागल हुए जाते हैं, लेकिन हम यह नहीं देखते कि वैयक्तिक सुरक्षा, व्यक्तिगत उपलब्धि, सफलता, शक्ति, प्रतिष्ठा आदि इन इच्छाओं ने इस संसार में क्या कहर बरपाया हुआ है. हमें यह अहसास तक नहीं है कि हम ही उस सब के जिम्मेदार हैं, जो हम कर रहे हैं. अगर कोई इच्छा को, उसकी प्रकृति को समझ जाये, तो उस इच्छा का स्थान या मूल्य ही क्या है? क्या वहां इच्छा का कोई स्थान है, जहां प्रेम है? या जहां इच्छा हो, क्या वहां प्रेम के लिए कोई जगह है?

जे कृष्णमूर्ति

आपके पत्र

अब परिणाम का है इंतजार

पिछले सवा महीने से आइपीएल और लोकसभा चुनाव की खूब चर्चा हो रही है. दोनों अब अपने अंतिम पड़ाव पर आ चुके हैं. इन दोनों में अब दो कदम के फासले बचे हैं. एक ओर जहां दो मैच के बाद 12 मई को आइपीएल की विजेता का पता चलेगा, वहीं दूसरी ओर लोकसभा चुनाव में बचे दो चरणों के बाद 23 मई को परिणाम आयेगा. इन दोनों में एक आश्चर्यजनक समानता देखने को मिली कि दोनों में नियमों का खूब उल्लंघन हुआ. एक ओर आचार संहिता का, तो दूसरी ओर क्रिकेट के नियमों का उल्लंघन हुआ. नेताओं द्वारा आचार संहिता का उल्लंघन इतनी बार हुआ कि शायद उसकी गिनती भी न हो पाये. हालांकि संबंधित विभाग द्वारा आवश्यक कार्रवाई भी जरूर की गयी. एक ओर आइपीएल में अंपायरों ने कई फैसलों पर निराश किया, वहीं चुनाव आयोग ने भी कहीं-कहीं नेताओं के गलतियों पर छोटी कार्रवाई से निराश किया. अब बस दोनों टूर्नामेंटों के परिणाम का इंतजार है.

शुभम गुप्ता, नावागढ़, धनबाद

शिक्षा बन गया व्यवसाय

भारतीय शिक्षा पद्धति का अब यह हाल है कि प्राइवेट स्कूल, कॉलेज आजकल पांच सितारा होटल संस्कृति की तर्ज पर करोड़ों-अरबों रुपये का टर्न ओवर करने वाले 'बिजनेस संस्थान' बन गये हैं. आज से लगभग तीस-चालीस वर्ष पूर्व 60 प्रतिशत अंक लाना भी उस बच्चे के लिए गर्व की बात होती थी. वहीं, आज इतिहास, भूगोल और राजनीतिक विज्ञान जैसे विवरणात्मक विषयों में भी शत प्रतिशत अंक मिल रहे हैं. पहले सिर्फ गणित में ऐसा संभव था. आज दुनिया के 100 स्तरीय शिक्षा संस्थानों में देश का कोई शिक्षा संस्थान नहीं है. यहां के इंजीनियरिंग कॉलेजों से निकलने वाले 80 प्रतिशत इंजीनियर किसी काम के नहीं हैं. हमें उत्तरी यूरोप के देश फिनलैंड से प्रेरणा लेनी चाहिए ,जो विश्व की सबसे सर्वश्रेष्ठ शिक्षा देने वाले देशों में प्रथम है. आश्चर्यजनक रूप से वहां भारत जैसे एक भी कथित पब्लिक स्कूल नहीं है.

निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद

परिवार से मिलती है मन की शांति

संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जिसे मन की शांति नहीं चाहिए. हर एक इंसान अगर कोई काम करता है, तो सिर्फ अपने मन की शांति के लिए. मगर फिर भी उसे शांति नहीं मिलती. व्यक्ति जब सुबह घर से निकलता है, तो यह सोचता है कि आज जब घर लौटूंगा तो चैन की नींद सो पाऊंगा, लेकिन उसे फिर भी मन की शांति नहीं मिलती क्योंकि वह दूसरे दिन के बारे में सोचने लगता है. क्योंकि उसके पास जितना है उससे वह संतुष्ट नहीं है. उसको और चाहिए. संतुष्टि के लिए आनेवाले कल की फिक्र करने के बजाय आज में ध्यान देना चाहिए. और जितना पास में है उसी में खुश रहें. अपने परिवार पर ध्यान समय दे तो उससे संतुष्ट और शांति किसी और में नहीं. क्योंकि हम जो भी करते हैं अपने परिवार के लिए ही करते हैं, उनकी खुशियों के लिए करते हैं. परिवार को प्यार की जरूरत होती है दौलत की नहीं.

अनामिका डे, राज खरसावां

कुछ अलग

वक्त ने किया क्या हसीं सितम !

शफक महजबीन
टिप्पणीकार
mahjabeenshafaq@gmail.com

एक कहावत है- शायरों और कवियों के 'कौल' और 'फेल' में बहुत ही फर्क होता है, लेकिन कैफी आजमी को पढ़ते हुए यह फर्क कहीं नजर नहीं आता. कैफी ने महज ग्यारह साल की छोटी-सी उम्र में पहली गजल लिखी- 'इतना तो जिंदगी में किसी के खलल पड़े/ हंसने से हो सुकून न रोने से कल पड़े.' इस गजल को पढ़कर कैफी आजमी की शायरी के मेयार का अंदाजा लगाया जा सकता है.

कैफी आजमी का जन्म आजमगढ़ जिले के मिजवां गांव में 14 जनवरी, 1918 को एक जमींदार परिवार में हुआ था. इनका असली नाम अतहर हुसैन रिजवी था. साल 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लिया और 19 साल की उम्र में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये. उस दौरान मुशायरों में भी शिरकत करते रहे और उनकी पहचान इंकलाबी शायर के रूप में होने लगी. साल 1947 में एक मुशायरे में इनकी मुलाकात शौकत जी से हुई. कैफी के नज्म सुनाने के अंदाज से वे बहुत मुतासिर हुईं. वह मुलाकात एक दिन शादी में बदल गयी.

कैफी सिर्फ इंकलाबी शायरी नहीं करते, बल्कि वे खुद इंकलाब की मशाल लेकर सबसे आगे चलते हैं. 'जब भी चूम लेता हूं उन हसीन आंखों को...' लिखते हुए कैफी की अंधेरी दुनिया में सौ चिराग रोशन होते हैं, और मर्द-औरत को बराबर मानते हुए आवाज देते हैं- 'उठ मेरी जान! मिरे साथ ही चलना है तुझे.' कैफी यहीं नहीं रुकते, एक औरत की शर्म को अपनी आवाज देकर वे कहते हैं- 'तुम मोहब्बत को छुपाती क्यों हो...'

कैफी आजमी की खासियत थी कि वे सस्ती शायरी न तो सुनते थे और न ही करते थे. वे अपने दिल में गालिब को रखते थे, लेकिन कैफी को पढ़ते हुए हम सिर्फ कैफी को ही देखते हैं. जाहिर है यह उनकी अलहदा शायरी ही है, जो उन्हें कैफी आजमी बनाती है. साल 1944 में कैफी आजमी की पहली किताब 'झनकार' आयी, जहां से उनकी कताबों की तरतीब शुरू होती है और 'आखिर-ए-शब' (1947), 'आवारा सज्दे' (1973), 'मेरी आवाज सुनो' (1974) से होते हुए साल 1992 में 'सरमाया' पर जाकर यह तरतीब थम जाती है, लेकिन उनकी शायरी आगे भी जारी रहती है.

उर्दू के तरक्कीपसंद शायर कैफी आजमी की आज पुण्यतिथि है. उनकी शायरी और उनके गाने के बोल आज भी हमारे दिलों में रोमांच पैदा करते हैं. कैफी आजमी ने हिंदी फिल्मों में भी एक से बढ़कर एक गीत लिखे. 'वक्त ने किया क्या हसीं सितम', 'कर चले हम फिदा जानो-तन साथियों' जैसे गीत आज भी लोगों को बहुत पसंद आते हैं. जब वे आजमगढ़ से मुंबई गये थे, तब उस दौर की फिल्म इंडस्ट्री में उर्दू शायरों को हिंदी फिल्मों में गीत लिखने का काम मिल जाता था और संगीतकारों को भी अच्छे गीतकार मिल जाते थे. साल 1952 में शाहिद लतीफ की फिल्म 'बुजदिल' से इन्होंने गीत लिखने की शुरुआत की. फिर चेतन आनंद की फिल्म 'हकीकत' और 'हीर रांझा' में गाने लिखे और बतौर गीतकार स्थापित हो गये. आज ही के दिन 10 मई, 2002 को वे दुनिया छोड़ गये.

देश दुनिया से

पिछली सरकारों की तरह है इमरान सरकार

पाकिस्तान में इमरान खान की सरकार बने आठ महीने हो गये हैं. अब जाकर कुछ समझ में आने लगा है कि आखिर इस सरकार की सोच क्या है और यह किधर जा रही है. हालांकि, बीते आठ महीनों में हमने देखा है कि किस तरह इमरान सरकार एक मछली की तरह फंसकर छटपटा रही थी. लेकिन, अब स्पष्ट हो गया है कि जिस काम के लिए इस टीम का चुनाव हुआ है, उसकी दिशा क्या है. एक समस्या साफ दिख रही है कि DAWN इमरान के नेतृत्व से जो कुछ भी प्राप्त होनेवाला है, वह इस बात से अलग नहीं है कि बीते समय में पाकिस्तान ने क्या कुछ पाया है. उनके पहले की तीन सरकारों ने जो रास्ता तैयार किया, उसी रास्ते पर इमरान भी चल रहे हैं. बढ़ती बेरोजगारी और मुद्रास्फीति के इस दौर में उनके नेता हाथ हिलाते हुए और मुस्कुराते हुए आगे बढ़ जाते हैं. यह बहुत बड़ी विडंबना है. इमरान खान को उनके साथ चलते हुए अपने राजनीतिक तौर-तरीके को व्यवस्थित करना होगा, लेकिन ऐसा हो नहीं रहा है. अर्थव्यवस्था और तमाम नीतियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि फिलहाल देश का जो सूरते-हाल है, इमरान खान की सरकार भी उसी तरह अपना कार्यकाल खत्म कर लेगी, जैसा कि उसके पहले की सरकारों ने किया था.

कार्टून कोना

विलुप्त होतीं प्रजातियां

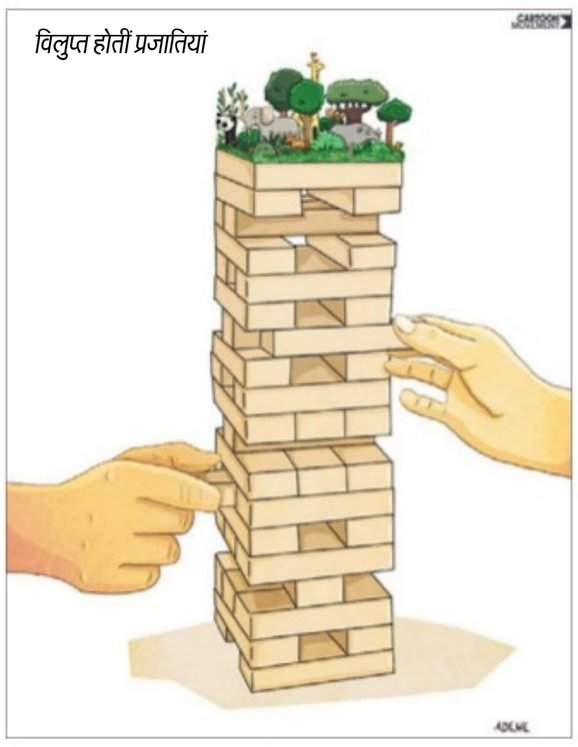

साभार : कार्टूनमूवमेंटडॉटकॉम

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar .in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो . लिपि रोमन भी हो सकती है